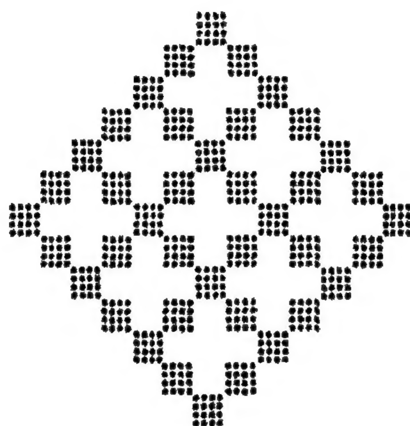
हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला—७७ वाँ ग्रन्थ

शारदीया



दिनेशनन्दिनी चोरड्या

प्रकाशक
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद।

द्वितीय संस्करण, १९४२
मूल्य २)

मुद्रक
गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, इलाहाबाद।

समर्पण

पूज्या !

समस्त हृदय की पवित्र भावनाओं से मेरे गीत भरे हैं ! अब मैं ऐसी पुस्तक फिर लिख सकूँगी इसमें सन्देह है। इसमें प्रेम है, ज्वाला है, धड़कन है, और भी न मालूम क्या है जो मैं नहीं समझती, पर तुम अवश्य जानोगी !

महादेवी ! मैं इसे आप के कर-कमलों में समर्पित कर रही हूँ, यदि मुझसे कोई पूछ बैठे क्यों तो मैं निरुत्तर हूँ। न जाने क्यों !

तुम्हारी
'दिनेश'

'शबनम' का द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है, हमें विश्वास है कि जिस भाँति पाठकों ने प्रथम संस्करण को अपनाया था उसी भाँति इस संस्करण को भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे।

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री
साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।

कुछ शब्द

गद्य गीत साहित्य की भावनात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें कल्पना और अनुभूति काव्य उपकरणों से स्वतंत्र होकर मानव-जीवन के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त और कोमल वाक्यों की धारा में प्रवाहित होती है। प्रकृति के नवीन किन्तु अनंत रहस्य जिस प्रकार पुष्पों के सुगन्धित शरीर में छिपे हुये हैं उसी प्रकार मानव-जाति के रहस्य प्रतिदिन होने वाली घटनाओं के नीरस किन्तु तथ्यपूर्ण स्वरूपों में निहित हैं। अन्तर्दृष्टि का धनी लेखक इन रहस्यों का अन्वेषण कर इन्हें जितने स्पष्ट रूप से हमारे सामने रख सकेगा वह उतना ही प्रतिभावान होगा।

गद्य गीत का गद्य में वही स्थान है जो पद्य में गीतकाव्य का है। दोनों काव्यों में अन्तर्जगत जैसे घनीभूत होकर बैठ गया है। व्यक्तिगत रति, शोक, हर्ष, उत्साह, रोष, भय, ग्लानि, आश्चर्य और विराग परिस्थितियों के परिधान लेकर हमारे समस्त जीवन की आलोचना करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। उस जीवन में आत्मा की अपनी अनुभूति होती है। वह मीरा बन कर नन्दलाल से अपने नैनों में बसने की प्रार्थना करती है। इसी साधना से अन्तर्जगत के न जाने कितने रहस्य सुलझाए जाते हैं, प्रकृति के न जाने कितने कितने चित्र ईश्वरीय सन्देश

के रंग से भरे हुए मिलते हैं। इन रहस्यों के सौन्दर्य-दर्शन से साधक के भाव न्यूनतम हो जाते हैं। मौन की संकुचित परिधि में उसके विचार अनुभावों का तीव्रतम रूप धारण करते हैं—एक भावना और उसमें अनन्त अनुभाव। एक भावना के अन्तर्गत अनन्त अनुभावों की स्थिति ही गद्य गीत की साधना है।

हिन्दी में गद्य गीतों की जो शैली चल पड़ी है वह नवीन होते हुए भी भावमय है। यद्यपि विचारों के विकास की ओर हमारे लेखकों का ध्यान नहीं है तथापि प्रकृति और मावन-जीवन के रहस्यों से वे परिचित होते हुए जान पड़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका दिनेशनन्दिनी जी गद्य गीत के लेखकों में महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं।

दिनेशनन्दिनी जी का संसार भस्म और अन्धकार से बना हुआ है पर प्रकाश पाने के लिए उसके कण अनन्त गति से भ्रमण कर रहे हैं। उसमें शीत का आतङ्क रहते हुए भी वसन्त के स्वागत की आकांक्षा है। मानव-जीवन की यही कामना उसे परिष्कृत करती है, उसे उस आरसी का रूप देती है जिसमें ईश्वरीय शक्ति अपने रूप और यौवन की छवि निहारती है। दिनेशनन्दिनी जी की करुण भावनाओं की यही मर्यादापूर्ण कहानी है जिसमें काँटों की नोक पर फूल है और श्मशान की चेतनाशून्य भूमि पर अलसायी हुई ज्योत्स्ना है। संसार की परिस्थितियों के इन चित्रों में जिनमें अन्धकार का साम्राज्य है

दिनेशनन्दिनी जी की आँखें स्वर्ण-प्रभात के सुनहले स्वप्नों के देखने का उपक्रम करती हैं।

यही बात विरह की है। इन गद्य गीतों में विरह और निराशा की मार्मिक व्यथाएँ हैं। कबीर ने कहा है:—

> बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुलतान।
> जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान॥

विश्वात्मा का विरह तो अभिनन्दनीय है। प्रेम और विरह एक ही भावना के दो रूप हैं। एक में दूसरा अपना अस्तित्व मिलाए हुए है जैसे वायु में सुगन्धि। यद्यपि इस निराशा की चित्रावली अनेक बार अपना आवर्तन करती है तथापि हम प्रत्येक बार महत्वाकाँक्षा के दर्शन पाते हैं। जीवन में यद्यपि सूनापन है, यौवन में अशान्ति है, नेत्रों में विराग है और चुम्बन में शीतलता है किन्तु रूठे हुए 'राजन्' को मनाने की अभिलाषा अवश्य है। निराशा का मूल्य तभी है जब हृदय में प्रतिक्रिया हो, नहीं तो निराशा और मृत्यु में कोई अन्तर नहीं है।

दिनेशनन्दिनी जी ने प्रकृति के सुन्दर चित्र सजाये हैं। उनमें इन्द्रधनुष के रङ्ग हैं पर वे स्थायी हैं। उनके प्रसूनों में पारिजात का परिमल है। प्रकृति के इस क्षेत्र ही में आत्मा परिष्कृत होकर परमात्मा से मिलती है। रासपंचाध्यायी में माधव भी राधा से वहीं मिले थे। दिनेशनन्दिनी जी की साधिका अपने आराध्य से यहीं मिलना चाहती है। इन चित्रों का स्वरूप स्पष्ट करने के

लिए लेखिका को एक ही भावना दुहरानी पड़ती है। किसी भावना का सूत्रपात कर उसका विस्तार किया जाता है; जब भावना के विस्तार में अनुभूति प्रकट हो जाती है तब उसका स्मरण एक बार फिर अन्त में कर दिया जाता है। लेखक अपनी सिद्धि से अभिज्ञ हो जाता है। दिनेशनन्दिनी जी ने भी यही किया है। यद्यपि किसी किसी स्थान पर इस दुहराने से भाव-रंकता का आभास मिलता है, तथापि उन चित्रों को निर्माण करने वाले भावों का मूल्य उतना ही रहता है।

नन्दिनी जी की भाषा बड़ी स्वतंत्र है। उसमें फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों के रहते हुये प्रवाह का सौन्दर्य है। हृदय के संदेशों को भाषा के शृङ्गार की आवश्यकता नहीं है। सम्भव है परिष्कृत शैली के पोषकों को यह भाषा कुछ खटके पर इतना तो माना जा सकता है कि इस भाषा में भावों की स्वच्छन्द गति की कितनी बड़ी छाप है।

हम गद्य गीतों के इतने सुन्दर संग्रह के लिये श्री दिनेश-नन्दिनी जी को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दी के विद्वान उसका उचित आदर करेंगे।

हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
४-९-३६

रामकुमार वर्मा एम० ए०

तू है सच्चा तो आक़िल क्यों बनाते हैं जहाँ को झूठा ?

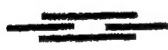
तू है निराकार तो शक्ल और सूरत, रंग और रूप की नुमायश क्या है ?

जब तू ही तू है व्याप्त अखिल ब्रह्माण्ड में तो फिर माया क्या है ?

तू ही है अजर, अमर, अनन्त तो बता, देश और काल जरा और मृत्यु के चित्र-पट क्या हैं ?

तू ही है घोर में अघोर, अनेक में एक, शून्य में विशून्य, असार में सार, मोह में विमोह और तिमिर में ज्ञान-रूप !

ऐ कोटि सूर्य सम प्रभावाले निरंजन ज्योतिस्वरूप ! तुझे शत-शत बार नमस्कार है !



मैं प्रणय-विभोरा नहीं हूँ परन्तु न मालूम वे मुझे क्यों प्रमादिनी कहते हैं !!

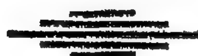
मैं बसन्त की सुषमा नहीं हूँ फिर भी उनका हृदय-पक्षी क्यों कोकिला की तरह गा-गा कर मेरा स्वागत करता है ?

मैं त्रिवेणी की पवित्र धारा नहीं हूँ किन्तु वे मेरे नवल नेहनीर में नहा कर ही क्यों अपने पापों का प्रक्षालन समझ लेते हैं ?

मैं श्रावण की श्याम घटा नहीं हूँ, फिर भी मेरे दर्शन-मात्र से उनका मन-मयूर क्यों सहसा मत्त हो नृत्य करने लगता है ?

न मैं पियूष हूँ, और न देव और दानवों को पिलाने वाली त्रिभुवनमोहिनी देवबाला, फिर भी वे मेरे पदाम्बुजों के चुम्बन-मात्र से क्यों मृत्यु का ताण्डवकारी भैरव रूप भूल जाते हैं ?

मैं प्रणय-विभोरा नहीं हूँ फिर भी—न मालूम क्यों वे मुझे प्रमादिनी कहते हैं !!!



स् प न म



तुम मेरे कौन होते हो ?

मैं स्वयं नहीं जानती कि उसका क्या उत्तर दूँ ? मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, फिर भी मेरे नयन तुम्हें देखने के लिये न मालूम क्यों व्यग्र रहते हैं ? जब तुम मेरे पार्श्व में नहीं होते हो तो मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है, और एक अजीब बेचैनी मुझे आ घेरती है; मुझे आसमान के नीले गुम्बज के नीचे उड़ने वाले पक्षियों से ईर्षा होती है जो तुम पर अपनी सुखद छाया डाल कर पुलकित होते हैं और उन धूल-कणों से भी जो तुम्हारे स्पर्शमात्र से गङ्गा-माटी रेणुका सी पवित्रता प्राप्त करते हैं ।

कमल-नाल के तन्तुओं से भी झीने बन्धनों से तुमने मुझे बाँध रखा है, तथापि प्रयत्न करते भी मैं उसे तोड़ नहीं सकती हूँ ।

मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, किन्तु मेरे हृदय में तुम्हारी परछाईं प्रतिबिम्बित है; तुम ही मेरे उर की साध और सुषमा हो और पल-पल में मेरी यही भावना रहती है कि अपना



सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर जीवन-समर्पण का राग अलापूँ जो धरणी-तल पर और अम्बर में छा जाय !

मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ फिर भी सदा तुम्हारे ओज से हैरान रहती हूँ क्योंकि तुम ध्यानावस्थित हो कर ज्ञान के गगन-चुम्बी शिखरों पर सहज ही विचरते हो, जहाँ न क़ाज़ी की पहुँच है, न पण्डित की ! जब तुम चले जाते हो तो मेरे दिल से तुम्हारी याद क्षण भर के लिये भी नहीं मिटती है और तुम्हारी श्रुति-मधुर वाणी का संगीत मेरे कानों में गूँजता रहता है, तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरी जीवन-सरिता अपने सम्पूर्ण वेग से तुम्हारी ओर ही तरङ्गित होती है।

मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, फिर भी जैसे सूर्यमुखी निमिष-निमिष में सूर्य की ओर ही अपलक आकर्षण से अपने मुख को मोड़ती रहती है, वैसे ही मेरा मन भी अपने निहित रहस्य का भार लिये तुम्हारी सूरत की ही परिक्रमा किया करता है; मेरे हृदय-गगन में रात भर तुम्हारे नयन-द्वय दो ज्वाजल्यमान नक्षत्रों की तरह उदय होते हैं और उस ज्वलंत प्रकाश में मेरा झपकी लेना भी मुहाल हो जाता है, जब कि सब जगत मद-होश होकर सोता है।

मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ, ताहम, मेरा जी चाहता है कि मैं अपने स्वप्न, दिले-पुर-दर्द के टुकड़ों के साथ, तुम्हारे चरणों में बिछा दूँ—और तुम उन्हें खूब रौंदो—अपनी कविता को

तुम्हारी रूह के नजराने में हूँ क्योंकि वह नज्म का पुष्प तो उसी अगम के उद्यान में प्रस्फुटित हुआ है, और जैसे जीवन-पथ में वैसे ही मौत के मार्ग में भी मैं तुम्हें अपना रहनुमा, अपना मुर्शिदे-कामिल समझूँ !

तुम अग्नि हो तो मैं उससे प्रकट होने वाला स्फुलिंग,

तुम दरिया हो तो मैं उसके बीच में रमने वाली मौज,

तुम दीपक हो तो मैं उसकी लौ, तुम चन्दन हो तो मैं उसकी सुगन्ध !

तुम मेरे कौन होते हो ? मैं स्वयं नहीं जानती ???



जीवन की दुर्गम घाटी मे काल-स्रोत कलकलनाद कर रहा है !

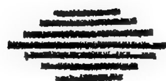
मेरे आँसुओं की अविरल धारा उसी में मिल कर बहती है,

और मेरे भाव-पक्षी उसीके मधुर सङ्गीत की प्रतिध्वनि में नीरव हो जाते हैं !

प्रेम-कमल की किश्ती पर चिरमिलन के स्वप्न सजा, मैं अनन्त अभिसार-यात्रा के लिये निकल पड़ती हूँ, मार्ग मुझे नहीं सूझता है; किन्तु—हास्य और रुदन के परे जो प्रदेश हैं उस दिशा में नौका घूसती है !

पिया ! मुझे डाँड़ घुमाना नहीं आता। रात की विजन घड़ियों में थकान से चूर होकर मैं तुम्हारा आह्वान करूँ तब तुम आना न भूलना ऐ मेरी नाव के खेवैया !

जीवन की दुर्गम घाटी में काल-स्रोत कलकल नाद कर रहा है !



रूठे राजन् !

तुम्हें मानने के लिये क्या उपहार लाऊँ ? तुम्हारे जीवन में रुखाई है, शरीर में शौर्य है, आँखों में ज्वाला है, स्वभाव में अवहेलना है !

और राग में रङ्ग नहीं है !

मेरे यौवन में वैकल्य है, सौन्दर्य में आकर्षण है, अधरों में मदिरा है, आँचल में प्रसून हैं, आत्मा में महामिलन के स्वप्न हैं और प्रेम में पारिजातों का परिमल !

रूठे राजन् ! तुम्हें मनाने के लिये क्या उपहार लाऊँ ?

प्रौढ़ जीवन के प्राङ्गण तक पहुँच कर भी मैं नहीं समझती, जीवन अभिशाप है कि वरदान ?

यौवन जब हृदय की सीमा को लाँघ कर आँखों तक उछल पड़ता है, तब भी मैं निश्चित नहीं कर पाती, प्यार करूँ अथवा मातृत्व के ममत्व का महान् आँचल पसारूँ ! जरा से अघा कर मृदुल मृत्यु का आलिङ्गन करते समय भी मुझे नहीं सूझता कि बेगाने विश्व को अपना समझूँ वा अनन्त की उपासना करूँ जहाँ मेरे उनके शुभमिलन की सम्भावना है !

सखी री बता, बता, जीवन देवता का अभिशाप है या वरदान ?

मुझे तुम्हारे किंखाब के थान और ज़री के पोत नहीं चाहिये, मैं तो बल्कल पहन कर ही पुलकित हो जाती हूँ !

रहने दो, अपने मणि-मुक्ता-जटित आभूषण, मैं तो मौलश्री की माला से ही दीप्त हो उठती हूँ; तुम्हारे राज-प्रासादों की ऊँची-ऊँची अटारियों पर सोने का मुझे मोह नहीं है, मैं तो घास-फूस की छपरिया में ही छगन-मगन हूँ !

मधुबालाओं में बिखरे हुए अपने उच्छिष्ट प्रेम के कण छिड़क कर मुझे मातल न बनाओ, मैं तो तुम्हें प्यार करके ही जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँच जाती हूँ !

इन मणि-मुक्ता-जटित आभूषणों को रहने दो, पिया !!

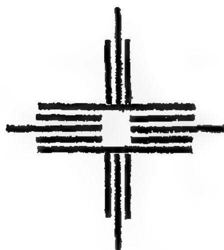


तुम अपना कम्बल कन्धे पर डाल, सम्बल सँभाल, भू-पर्यटन के लिये चल दिये !

ब्रह्म-मूहूर्त्त में दो-चार बासी तारे तन्द्रा में ऊँघ रहे थे, रजनी के अवसान के साथ ही प्रेम का स्वप्न भंग हो गया था;

प्रभात के प्रकाश में गत दिवसों की स्मृतियाँ द्वन्द्व मचा रहीं थीं !

मेरी आँखों के धन—अनमोल आँसुओं को दुपट्टे के पल्ले में बाँध तुम पृथ्वी-परिक्रमा को चल दिये और मैं तुम्हारी छाया को आलिङ्गनबद्ध कर चित्रवत् खड़ी रही !!



तुम्हारी भरी प्याली मैंने अपने अधरों से स्पर्श की है!

तुम्हारे केश कलाप को मैंने सूँघा है, अपने शीश को मैंने तुम्हारे हिमश्वेत वक्ष पर रखा है, तुम्हारे गम्भीर हृदय के रहस्यों का मैंने उम्र भर अध्ययन किया है, तुम्हारे अधर-माधुर्य को अपने अधरों में बसा कर, नयनों के राग को नयनों में रमाकर तुम्हारी सुरभित आत्मा के अमर सौन्दर्य्य का रसास्वादन किया है।

अब मुझे क़ज़ा का क्या डर? मृत्यु अपने पञ्जों से प्रेम की प्याली पर आघात करे, किन्तु वह उसमें के अमृत को नहीं बिखेर सकती जिससे मेरे लब गीले हैं!

तुम्हारी भरी प्याली मैंने अपने अधरों से स्पर्श की है!



उम्मीद पर ही मेरी ज़िन्दगी क़ायम है ! अल्लाह रे, कब मेरी मुराद पूरी होगी और कब मैं बिना उम्मीद के जीवित रहूँगी !

ऐ लालो जौहर के धनी ! मुझे फटे चिथड़ों में देखकर घृणा से नाक न सिकोड़ ! मेरे पास वह आबदार मोती है जिसका ख़रीदार अब तक बाज़ार में नहीं है !!!

सजनी ! प्रेम की पीड़ा कैसे सहूँ ?

जिसने दर्दे-दिल दिया है वही मेरी परिचर्या भी करता, किन्तु वह तो आज मेरी खिड़की के नीचे से गुजरा पर उसने मेरी ओर देखा तक नहीं।

आह ! सजनी—प्रेम की पीड़ा कैसे सहूँ !

मेरे रक़ीब, मयख़ाने में बैठ कर तुम्हारे हास्य की चन्द्रिका में फेनिल सुरा से भरे जाम पर जाम पियें और मैं प्यास के कारण कण्ठागत प्राण होकर बूँद बूँद के लिये तरसूँ ? परन्तु, मेरे लिये क्या यही कम है कि तुम रात-दिन मेरे हृदय में बसो और मैं तुम्हारे दर्शन से सदैव अपनी आत्मा की अथक पिपासा शान्त करूँ !

मृत्यु की द्राक्षा !

जीवन की भरी दोपहरी में कब से प्याली लिये तेरी शीतल छाया में खड़ी हूँ ! अपने वक्ष से प्रवाहित होने वाली तीर्थ-धारा से मेरा रिक्त पात्र भर दे, जिसे मैं पीकर पूर्णता प्राप्त कर सकूँ !

मृत्यु की द्राक्षा !



मुग्धमयंक में लोग अमृत बताते हैं, किन्तु विश्व में लाख ढूँढ़ने पर भी मुझे तो सजीव सुधा तुम्हारे बिम्बाधरों को छोड़ अन्यत्र कहीं न मिली !

आनन्द की खोज में घूमते-घूमते युग बीत गये परन्तु मुझे तो उसका आभास तक तुम्हारे हृदय को छोड़ कर कहीं न हुआ !

मर्त्य-लोक की रेत में अनन्त युग, शान्ति की तलाश में भटकते-भटकते निकल गये, किन्तु मुझे तुम्हारे चरणों को छोड़ कर और कहीं उसका चिह्न भी न दिखा !!



मृत्तिका के रिक्त पात्र को राधा भरती है, भर-भर कर ढुल-काती है और फिर भरती है, फिर भरती है, क्योंकि अपने नेत्रों का प्रतिबिम्ब यमुन-जल में निहार कर उसे मीन का संशय हो जाता है !

रसिक-शिरोमणि श्याम इस विस्मय-विमुग्धकारी लीला को पनघट पर खड़े देखते हैं और मन ही मन मुस्कुराते हैं।





अपने स्वर्ण-सिंहासन से रत्न-खचित पाद-पीठ पर गिर कर मुझसे मुआफ़ी न माँगो देव !

यदि मैं तुम्हारे अपराधों के लिये तुम्हें क्षमा करूँ, तुम्हारे दोषों के लिये प्रायश्चित तजवीज़ करूँ तो फिर तुम्हारे चरणों की भक्ति में कैसे लीन रह सकूँगी ?

मेरे सुख-दुख का तनिक भी ध्यान न रख कर मुझे कष्टों की कसौटी पर ख़ूब कसो नाथ ! बारम्बार मेरी पुकार सुन कर भी दया बिसरा कर अपने पाषाण-हृदय को द्रवित न करो !

मुझसे रूठ कर अपने कोप की कराल ज्वाला में मुझे जलाओ, अभिशाप देकर भस्मीभूत कर दो;

परन्तु मेरे पाँव पलोटते हुए मुझ से क्षमा-याचना न करो ! मुझे काँटों का ताज पहनाओ, जी चाहे जितना ज़ुल्म करो, किन्तु तुम अपना मिथ्या अभिमान न तजो; मेरी निगाह में तो सदैव, देव—देव ही बने रहो !

अपने स्वर्ण-सिंहासन से रत्न-खचित पाद-पीठ पर गिर कर मुझसे क्षमा-याचना न करो देव !

तुम्हारी कीर्ति दिगंत में फैली होने पर भी मेरी स्मृति में ही अमर है !

पीयूष के बिना चन्द्रमा में स्निग्धता नहीं आती, केकी-रव के बिना मेघों में उत्साह नहीं भरता, आत्म-समर्पण के बिना यौवन में ज्वार नहीं उठता, साधना के बिना प्रणय में सफलता नहीं होती—ऐसे ही मेरे बिना तुम्हारी कीर्त्ति कवियों द्वारा गाई जाने पर भी अजर नहीं है ।

तुम्हारी कीर्त्ति-ज्योत्स्ना दिगंत व्यापी होने पर भी मेरी स्मृति में ही अमर है !



श्रा अ न्त श्र

मैं तो अपने गीत गा चुकी, अब ज़रा मुझे विश्रान्ति लेने दो!

अन्धकार के अवगुण्ठन में पृथ्वी ने अपना सौन्दर्य छिपा लिया है,

और पवन-प्रताड़ित आकाश में दो एक तारे टिमटिमा रहे हैं।

चन्द्रिका मेघ-धुँधली है,

हास और वेदना में उत्पन्न होने वाला लय यामिनी के सन्नाटे में शान्त हो गया। और अमर गीतों का गायक सोया पड़ा है!

मुझे भी नेत्र मूँद कर भविष्य के स्वप्न सजीव करने दो। नवीन जागृति का सुनहला स्वप्न मुझे न जगाये, तब तक मुझे नीरव शान्ति में सोने दो;

मैं तो अपने गीत गा चुकी!



मेरी पूजा में समय न गँवा पुजारी,

मैं परिचितों को पुरस्कार नहीं देती !

मेरी प्राण-प्रतिष्ठा करने में मुफ़लिस न बन मेरे भक्त ! मेरे वर-दानों से विश्व में कल्याण नहीं होता !!

मेरी स्तुति करने में सरस्वती न बहा श्रुतिकर्त्ता, मैं सिद्धियों की स्वामिनी नहीं हूँ !

मेरी पूजा में समय न गँवा पुजारी !!!

यदि तू मेरा प्रेमी न होगा तो मैं सदैव कुमारी ही रहूँगी !

मेरे सौन्दर्य के सुकुमार पुष्प के मधुर माधुर्य को ग्रहण कर पूजा के पवित्र धूप के समान उसकी सुगन्ध को स्मृति में बनाये रखने का अधिकारी केवल तू ही होगा,

मेरे प्रेम की थाती तेरे हृदय-मन्दिर में चिर संचित रहेगी, और आने वाले यौवन को, उद्वेग, शान्ति और अभिमान की पावन उमंगों से केवल तू ही राग-रञ्जित बना सकेगा।

यदि तू मेरा प्रेमी न होगा तो मैं सदैव कुमारी ही रहूँगी !!!



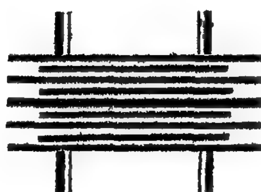
इस अज्ञात पथ पर ये फूल किसने बिछाये ?

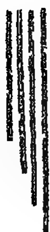
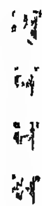
अस्ताचलगामी सूर्य के रक्त-प्रताम्र-पीतप्रकाश में जब शैल-बालाएँ स्वर्ण-रञ्जित हो जाती हैं, जलकुक्कुट और कारण्डव कमल-वन में क्रीड़ा करते हैं और प्रकृति नयन भर कर अपने रूप को सरिता की आरसी में देखती है,

तब मैं भी प्रियतम के रचे प्रणय-गीतों की रागिनी से सान्ध्य-गगन को निनादित कर धूम्रकेतु की तरह अस्त हो जाती हूँ !

इस स्वप्निल दुर्गम स्थल तक पहुँचने का प्रयास अब तक किसी ने न किया, और जिसने किया वह पहुँच न सका, फिर—

इस अज्ञात पथ पर ये फूल किसने छितराये ?



जीवन-प्राण, देखो तो करारे उच्छ्वास का यह अन्याय !

विरह के एक ही निश्वास ने प्रणय-निकुंज में दावानल दहका दिया, यह अर्धविकसित कोमल कलिका उस अन्तरज्वाला के सामने कैसे अमर रहेगी ?

मेरे भावनाभरे अनन्त हृदय-वारिधि को उसी उच्छ्वास के बड़वानल ने एक ही चुल्लू में शोष लिया ।

देवता ! मेरे कल्पना रसीले, अज्ञात, झूमते हुए यौवन को मादकतामय व्यंग की एक ही लहर ने—

अनन्त के ज्योतिर्पंखों पर लिटा दिया !

जीवन-प्राण, देखो तो करारे उच्छ्वास का यह अन्याय !





आ
श्व
स
न

बलमा, मुझ पर गहरे विश्वास का वज़न रख, स्नेह-समुद्र में इस तरह न डुबाओ !!

मैंने तो अपने प्रति तुम्हारी अन्ध-धारणा का बहुत पहले ही मूलोच्छेदन कर दिया,

मैंने पाप और पुण्य में कोई अन्तर न समझ अपनी सहज पावनता खो दी, और आज मुझे अपने जीवन के विश्लेषण मात्र से भास होता है कि—

अब मुझे में आत्मा के अन्तर्नाद और आर्द्र क्रन्दन सुनने की तनिक भी क्षमता न रही, क्योंकि मैंने अपने अहंमन्यता भरे गुरुत्व को ही सबसे बढ़कर माना।

इन अपराधों के लिये मैंने अपने आपको क्षमा कर दिया है, परन्तु तुम्हारी क्षमा-याचना की कल्पना मात्र से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं !

स्वामिन्, मुझ पर गहरे विश्वास का वज़न रख स्नेह-समुद्र में इस तरह न डुबाओ !!!



कमल ! तू मेरे कासार में न खिले, और मैं तुझे तोड़ कर अपनी बेणी में न गूँथ सकूँ, तो भी तुझे कोई दोषी न ठहरायेगा;

बसंत ! तू अपने आगमन से मेरी वाटिका प्रमुदित न करे और अपने सुगंधित श्वास से मेरे हृदय में आनन्दोच्छ्वास न भरे तो भी तेरी महिमा में कोई अन्तर न आयेगा;

नक्षत्र ! तू मेरे भाग्याकाश में चमक कर उसे प्रकाशित न करे तो भी तेरे गौरव में कोई कलंक न लगायेगा—

मैं तो तुम्हारे सौन्दर्य की चिरऋणी रहूँगी, क्योंकि—तुम मुझे इस उलझे वर्तमान में भी उस दिव्य लोक की झाँकी कराते हो, जिसके ललित स्वप्न मैं सदैव कल्पना की कूँची से अपने हृदय-पटल पर चित्रित करती रहती हूँ !

कमल ! तू मेरे कासारों में न खिले, और मैं तुझे तोड़ कर अपनी बेणी में न गूँथ सकूँ, तो भी तुझे कोई दोषी न ठहरायेगा !



रात की काली नागिन ने उस दिव्य प्रकाश को डस लिया है जो दिन में मुझे मार्ग दिखाता है।

इस प्रगाढ़ अन्धकार में असंख्य तारे मुझे टकटकी लगा कर निहार रहे हैं, और मेरा कोई भी रहस्य उनसे गुप्त नहीं रह सकता !

इस विषम परिस्थिति में न मैं सो सकती हूँ और न जागृत ही रह सकती हूँ !

न मालूम कब रजनी का शेष होगा और साथ ही इस भेद-भरी कड़ी निगरानी का भी !!

रात की काली नागिन ने उस दिव्य प्रकाश को डस लिया है जो दिन में मुझे मार्ग दिखाता है !



मैं रात-दिन कितनी बार तुम्हारा स्मरण करती हूँ ?

भला बताओ तो तुम्हारी अहर्निश फिरने वाली सुरभित श्वास की माला में कितनी मणियाँ रहती हैं; उतनी ही बार मैं तुम्हारा स्मरण करती हूँ।

मैं दिन-रात में कितनी बार तुम्हारा संकीर्तन करती हूँ ? प्यारे ! कहो तो, रजनी ने अपने वक्ष पर नक्षत्रों का जो नौलख-हार पहन रखा है उसकी स्वर्ण-श्रृंखला में कितनी कड़ियाँ हैं ?

उतनी ही बार मैं तुम्हारा संकीर्तन करती हूँ !

मैं रात-दिन में कितनी बार तुम्हारी मंजुल मूर्ति का ध्यान करती हूँ ?

मेरे शरीर की रोमावली की गिनती बताओ तो, जो तुम्हारे स्पर्श मात्रसे पुलकित हो उठती है; उतनी ही बार मैं तुम्हारा ध्यान करती हूँ !

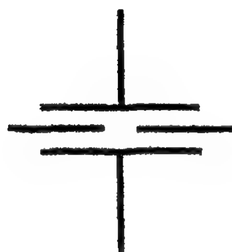
मैं अहर्निश तुम्हारा स्मरण, संकीर्तन और ध्यान करती हूँ !



मेरे प्रति तुम्हारी चाह और तुम्हारे प्रति मेरी चाह नील-कण्ठ के जोड़े की सदृश तूफ़ान और शान्ति में साथ उठती हैं और जीवन की सबसे ऊँची टहनी पर बैठ कर अपने मधुर संगीत से मृत्यु-मौन को आश्चर्यान्वित करती हैं !

मेरा उच्छ्वास और तुम्हारा आनन्द श्वेत कपोत-कपोती की तरह आत्मविभोर होकर अनन्त आकाश में उड़ते हैं और हृदय से हृदय सटा कर गटरगूँ-गटरगूँ द्वारा जीवनराग अलापते हैं।

मेरा प्रेम और तुम्हारा प्रेम विष्णु के पीताम्बर पहने पार्षदों की तरह विश्व के नन्दन-वन में मौज से विचरते हैं और अपने स्वर्गीय संगीत से जीवन-रहस्य में सदैव होने वाले घोर तुमुल को शान्त करते हैं !!



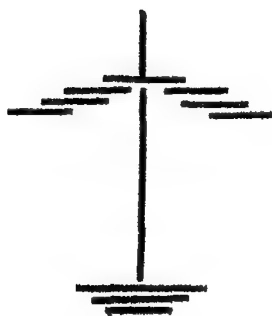
स्वर्ण-स्वप्नों के दिन विलीन हो गये तो भी उनकी स्मृति हरी है !

तेरे विरह में मेरी कविता-वल्लरि अश्रु-सुधा से सींची जाकर फूलती है इसीलिये मैं मिलन की चिन्ता में नहीं घुलती;

तेरी अक्षत मुस्कान में मेरा यौवन अमर है इसीलिये मुझे सौन्दर्य की पिपासा नहीं कलपाती;

तेरो नयनों में मेरा ओज रमा है इसीलिये साक़ी का कूज़ा मुझे आकर्षित नहीं करता और तेरे जीवन में मेरी मृत्यु छिपी है इसीलिये संसार की असारता से मुझे अनुराग नहीं होता !

स्वर्ण-स्वप्नों के दिन विलीन हो गये तो भी उनकी स्मृति हरी है !



यदि मैं दीप-शिखा होती तो तुम्हारा निर्दिष्ट जीवन-पथ को आलोकित करती;

यदि मैं कल्पना होती तो तुम्हारी कविता को नवीन युग के स्वप्नों से राग-रञ्जित बना चराचर को भावों की उड़ान और भाषा की माधुरी से मुग्ध करती;

यदि मैं विजय-श्री होती तो सदैव तुम्हारे सम्मुख हाथ बाँधे खड़ी रहती और जीवन-युद्ध में तुम्हें ही वरमाल पहनाती;

यदि मैं अनन्त रूप-राशि होती तो तुम्हारे रसीले नयनों के अवगुण्ठन में छिप, विश्व को उस रहस्यमय आकर्षण से विमुग्ध करती !!

स्वामिन् मैं तो एक अबोध बालिका हूँ—बताओ तो अब मैं तुमसे प्रणय-याचना कैसे करूँ ?

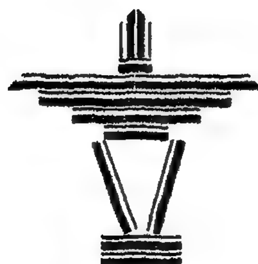


मैं भिखारिन नहीं हूँ, किन्तु किसी कुमारी की प्रणय-याचना पूर्ण होते देख, न मालूम क्यों व्यथित होती हूँ !

मैं सोहागिन नहीं हूँ, किन्तु किसी नवोढ़ा का रिसभरा मान देख कर न जाने क्यों रो उठती हूँ ;

मैं युवती नहीं हूँ, किन्तु किसी यौवन प्रगल्भा को अपने परदेशी प्रियतम को उपालम्भ देते देख, न मालूम क्यों चेतना खो बैठती हूँ !

मैं माता नहीं हूँ, परन्तु किसी रूठे शिशु को धूल में मचलते देख, न जाने क्यों उसे आँचल में छिपाने के लिये आतुर हो जाती हूँ !!



हम मरण शील हैं पर—मृत्यु से डरते हैं, हम चल हैं पर अचल से प्रेम करते हैं !

आकाश और मेदिनी, सूर्य और वायु, हमारे मरणोपरान्त भी रहेंगे, पक्षी जायेंगे, जीवन की लौ दूसरे प्रेमियों के अधरों में ज्यों की त्यों जलेगी और सौन्दर्य की वह्नि-शिखा पर मोह-मुग्ध शलभ प्रलय-काल तक हँसते-हँसते बलि हो जाँयगे; परन्तु, बसन्त और पतझड़, सूर्य और चाँद, रात और दिन हमारे सम्मुख नश्वर की मूर्त्ति निर्मित कर पल-पल में हमारी आत्मा को उत्पीड़ित और आन्दोलित करते हैं—और हमको,

भस्म, धूलि और अन्धकार की भेंट देते हैं !

हम मरणशील हैं परन्तु—मृत्यु से डरते हैं !!



तुम अखण्ड सत्य के पुजारी हो, और मैं भी, फिर मेरे और तुम्हारे बीच यह झूठ का आवरण कैसा ?

यदि प्रेम एक कल्पित स्वर्ण-संसार की रचना कर सत्य का गला घोंटता है तो बाज़ आये ऐसे प्रेम से—

पीर और मुर्शिदों ने क़ुरान और पुरान लिख, मन्दिर और मस्जिद बना, जीव और ईश्वर के बीच एक ऐसी ठोस दीवार खड़ी कर दी है कि विरले ही उसके परे देख सकते हैं।

तुमने भी सौन्दर्य और संङ्गीत, कला और कविता का आश्रय ले अपने—मेरे दर्म्यान एक ऐसा मोटा परदा डाल दिया है कि मैं तुम्हारे असली स्वरूप को नहीं पहचान सकती हूँ !

तुम किसी लुका-छिपी के बिना जैसी मैं वास्तव में हूँ वैसी देखो और मैं भी बिना किसी दिखाव-डराव के तुममें नग्न सत्य के दर्शन करूँ तब ही—तुम्हारा-मेरा प्रेम परिपूर्ण होगा !

तुम भी सत्य के पुजारी हो और मैं भी......



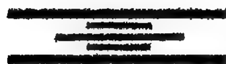
यदि तुम और मैं राजहंसों की युगल जोड़ी होते, चंचु से चंचु मिला कर मानसरोवर के फेनिल वक्ष पर कल्लोलें करते;

यक्षों की राजधानी अलका में मुक्ता चुगते, सुमेरु पर देव-गान्धर्वों का वाद्य-गान सुनते और कैलाश के धवल शिखर तक उड़, उमा-महेश्वर का सान्ध्य नृत्य देखते, जहाँ लक्ष्मी गाती हैं, सरस्वती वीणा, इन्द्र जलतरङ्ग, विष्णु मृदङ्ग बजाते हैं और ब्रह्मा ताल देते हैं—

प्रेम तुम्हारे-मेरे जीवन के तारों से संगीत निकाल, नवीन नन्दन-कानन का सृजन करता;

हरदम साथ रहते हुए भी हम सुरति-जनित उदासीन परितृप्ति से परे रहते—

और जब एक को मृत्यु आती तो दूसरा भी अपने प्रेमाधार के पंखों से पंख जोड़ दीपक-राग गाता हुआ उत्तुंग गौरीशंकर के तुषार-स्रोत में समाधिस्थ हो जाता ! यदि तुम और हम राज-हंस......

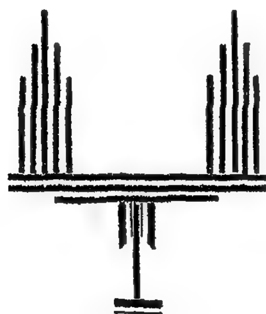


यौवन-प्रभात में रूप के ललित तंत्र को लिख कर साधना करती रही किन्तु, तुम न आये !

जीवन के प्रौढ़ में ज्ञान के कलित यन्त्र को चला मैं तुम्हारी उपासना करती रही, तुम न आये—न आये !

मगर जब दिन और रात के अधर मिले, अंधकार गिरि-शिखरों पर फैला, और समुद्र तट पर आत्मविभोर ज्वार का चढ़ाव आया तब मैंने एकनिष्ठ हो प्रेम का फलित मन्त्र पढ़ा और तुम तारों के झीने प्रकाश में मेरा हृदय-द्वार खटखटा रहे थे !

यौवन-प्रभात में रूप के ललित तन्त्र को लिख कर साधना करती रही पर तुम न आये !!



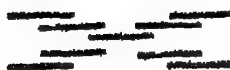
चित्रकला का अभ्यास कर मैं उसमें पारङ्गत नहीं हुई, परन्तु थोड़ी सी टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींच कर अनायास ही मैं तुम्हारा चित्र बना सकी;

रङ्ग मिलाने की क्रिया से भी मैं नावाक़िफ़ थी तो भी मैंने उस ख़ाक़े में प्रवालों की सफ़ेदी में गुलाब का ख़ुश रङ्ग मिश्रण कर भरा और उसमें हूबहू तुम्हारी आकृति उतर आई !

सब से अधिक कठिनाई तो मुझे तुम्हारे नयन बनाने में पड़ी और जब बार-बार प्रयत्न करने पर भी उन्हें सफलता पुर्वक व्यक्त न कर सकी तो मैंने खञ्जन की आँखें लेकर ज्यों की त्यों छवि-तट पर चिपका दीं !

सहसा तुम साक़ी का वेष पहन कर प्रशंसक के रूप में आये और उस्ताद और कला-मर्मज्ञ के नाते अपनी कूँची के अन्तिम स्पर्श से उसे पूर्ण करने ले गये !

यौवन-पट पर सर्व-प्रथम मैंने तुम्हारा ही चित्र अंकित किया था !!



दिन-रात की निस्पन्द सन्धि-बेला में, तुम मेरे पार्श्व में होते हुए भी मुझसे कितने दूर थे !

तुम्हारी और मेरी विचार-धारायें, भिन्न-भिन्न उद्गम स्थानों से निकली दो नदियों की तरह अलग-अलग बह रही थीं।

मैं तो तुम्हारे ही ध्यान में निमग्न थी, किन्तु अपने मदिर नयनों के लघु चित्रपट पर तुम अग्नि-कणों से उस हृदय-रानी का चित्र बना रहे थे जो तुम से दूर थी !

दिन-रात की निस्पन्द सन्धि-बेला में, तुम मेरे पार्श्व में होते हुए भी मुझसे कितने दूर थे !!





ऐ मेरे चित्रित शयन-मन्दिर की खिड़की को स्पर्श करने वाले स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे-मेरे बीच में कोई रोज़ का पर्दा नहीं है !

कोयल के मञ्जुल सङ्गीत को सुनकर मैंने तेरे अंग-अंग में कामाग्नि प्रज्वलित होते देखी है;

मैंने तेरी दिव्य आत्मा के देवता पवन को तेरे कोमल हृदय को स्पर्श करते, और तेरे चिरपिपासित ओष्ठाधरों पर अपने अतृप्त अधरों को रख कर तुझमें राग का ज्वार लाते देखा है !

तैंने भी मुझे प्रेम-पैंग में झूलती देखा है, संयोग और वियोग में हँसते और कलपते देखा है, और प्रीतम-प्यारे के साथ दान-लीला और मान-लीला करते देखा है ।

ऐ शीतल, स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे-मेरे बीच, कोई रोज़ का पर्दा नहीं है !



बन्दी, तुमने यह कैसी धूमिल आग जलाई है, जिससे सतत तुम्हारा दम घुटता रहता है ?

अभी, अभी, भुवन-भास्कर ने अपने स्वर्ण-रथ के पहियों के नीचे अन्धकार के काले हृदय को चूर-चूर कर आकाश को रक्त-रञ्जित किया है और कारागृह के बाहर भी नव जीवन प्रदान करने वाली शीतल सुगन्धित हवा चल रही है; परन्तु तुमने अपनी धुँधली दृष्टि उसी अस्थिर धूमिल अग्नि-शिखा पर ही गड़ा रखी है।

तुम्हीं तो अपने काल हो !

तुम्हीं तो परकोटे की चहार दीवारी हो जिसने तुम्हें चारों ओर से आवृत कर रखा है, तुम ही तो वह तेल और ईंधन हो जो अन्धकार का भक्ष्य है;

तुम ही तो वह दीपक हो जो स्वर्ग के फुल्ल-मुकुल प्रकाश को भीतर प्रवेश करने से रोकता है !

देखो, देखो, बन्दी, बन्दीगृह की दीवारें ग़ायब हो रही हैं, और तुम मुक्त हुए जाते हो !

बन्दी, तुमने यह कैसी धूमिल आग जलाई...??



विधुर क्रौंच अपनी प्रेयसी के निष्प्राण मांसपिण्ड और निष्कंप पंख-समूह पर बैठकर अपने तरल हृदय को अश्रुधारा में बहा रहा था।

पवन मौन था, और सरिता गतिहीन; सघन वन नीरव था!

वाल्मीकि के हृदय में सोई सरस्वती उस मर्मस्पर्शी करुण क्रन्दन की ठेस से सहसा जाग उठी, और संसार में अमर करुण—रसका संचार हुआ।

तब से कविता के दिव्य वेग में चढ़ाव उतार होता है परन्तु उसका सरस जल निरन्तर प्रवाहित होता रहता है—

और विश्व की मरुभूमि भी उस मन्दाकिनी का शोषण नहीं कर सकी है!



तुम्हारे नुक्स मैं नहीं बता सकती, फिर भी तुम मूर्तिमान् सौन्दर्य नहीं हो !

किसी के अधर बन्द गुलाब की कली से हैं; किसी के नेत्र हास्य और ज्योति के फव्वारे हैं और भौंहें दूज के चाँद सी टेढ़ी; किसी की नासिका सुग्गे की सी है; किसी के अंगों की गठन इस्पानी फ़ौलाद सी है और मुख की कान्ति बाल-सूर्य सी !

परन्तु—

तुम्हारे पूर्ण प्रेम ने मेरे मन-मुकुर पर प्रकाश की ऐसी किरणें डाली हैं कि दूसरों की आकृतियाँ मुझे धुँधली नज़र आती हैं, और उस प्रखर रोशनी में मैं उनकी खूबियाँ भूल जाती हूँ !

तुम्हारे नुक्स मैं नहीं बता सकती, फिर भी तुम मूर्तिमान् सौन्दर्य नहीं हो !!!





कल्पने ! मैं तुझ पर कुर्बान हूँ !

मैं षोड़शोपचार से तेरी पूजा करती हूँ, और तेरी वेदी को अपने हृदय-रक्त से सिंचन करने के लिये सदैव ही तैयार रहती हूँ पर—

पाषाणी, तू मुझसे रूठ क्यों रही है ? सुहासिनी, सुन, हिमालय और हिन्द-महासागर ज्यों का त्यों है;

बसंत, निदाघ, पावस और शिशिर ऋतुएँ आती हैं और जाती हैं;

फूल खिलते और मुर्झाते हैं,

परन्तु—हंसवाहिनी के श्वेत हास के बिना विश्व का अनूठा सौन्दर्य मेरे लिये अलोना है ! ऐ सरस्वती की संकोचशील पर मधुरिमापूर्ण आत्मा ! आकाश, पृथ्वी, और समुद्र तल पर मैं तेरे रत्न-मण्डित दिव्य आँचल को देखने के लिये तड़पती हूँ;

तेरे बिना मेरी कला सब व्यर्थ है ! मेरे मन का देव शान्त हो उसके पहले ही कल्पना ! मुझ पर कृपा कर; मैं तुझ पर कुर्बान हूँ !!!



बौरिन तेरी बाली उम्र, जप, तप, पूजा-पाठ, ध्यान-धारणा का अभ्यास कर स्वर्ग की सड़क पर चलने की नहीं है !

कमल—दल के पाँवड़ों पर मत्तगयंद की गति से गमन कर अपने चरण-तल की आभा अवनी पर फैला, न कि जीवन-उषा में ही बैरागिन बन परलोक की चिन्ता में दौड़-धूप करती फिरे !

किसी महाभाग के हृदय को अपनी अलौकिक रूपज्योति से जगमगा कर धरणी-तल पर ही नवीन स्वर्ग का निर्माण कर, न कि भोग से मुख मोड़ गेरुआ पहन, भभूत रमा योग में तल्लीन हो !

स्वर्ग के द्वारपाल बड़े बेमुरव्वत और दयाहीन हैं;

वे कठिन और पेचीदे प्रश्न पूछ कर पथिक को भ्रम में डाल देते हैं, और उसे निरुत्तर कर वहाँ से कोरा लौटा देते हैं !

बौरिन ! तेरी बाली उम्र तपश्चर्या और समाधि का अभ्यास कर स्वर्ग की सड़क पर चलने की नहीं है !

न जाने तुम कब आओगे ?

पल-पल में प्रलय हो रहा है;

'जीवस्य जीवोहि जीवनम्' की दुहाई देकर मनुष्य मनुष्य का भक्षण कर रहा है और हलाहल को अमृत समझ कर पी रहा है, विश्व-विलास की प्रसादियों और पापों का सुन्दर शृंगारों में सजा रहा है;

धन और धान्य के अम्बार के अम्बार रहते हुए भी दलित दीन भूख की असहाय ज्वाला में छटपटा रहे हैं;

मानव अपनी स्थूल भूताकृति को छोड़ कर एक दिव्य परोक्ष का विचरनेवाला देवता बनने के बजाय आदिमकाल का नर-मांस-भक्षक निशाचर बन रहा है;

सभ्यता संस्कृति और शान्ति का नामो-निशान मिटाने के लिये रण-चण्डी खड्ग और खप्पर लिये है ! ऐ सतयुग की स्थापना करने वाले कल्कि ! तुम अश्व पर आरूढ़ होकर भूमि का भार उतारने और जगत का कल्याण करने न मालूम कब आओगे !!

यहाँ तो पल-पल प्रलय हो रहा है !

दुनिया बावरी तुम्हें मलयागिरि का शीतल सुखद तरुवर समझती है और मुझे विष-बल्लरी !

तुम यदि शुभ्र बर्फ का किरीट धारण करनेवाले हिमालय हो तो मैं उससे प्रवाहित होने वाली मन्दाकिनी, यदि तुम मूर्तिमान त्याग हो तो मैं उससे उत्पन्न होने वाली शान्ति-सुधा,

तुम कमल-पुष्प हो और उसमें बसने वाली परिमल,

तुम पुरुष हो तो मैं जीवन-सहचरी प्रकृति,

तुम ब्रह्म हो तो मैं माया;

फिर भी दुनिया बावरी तुम्हें मलयागिरि चन्दनका शीतल सुखद तरुवर समझती है और मुझे विष-बल्लरी !!!



जब मंगल-प्रभात की बाल रश्मियाँ मेरी चिर जीवन-चिन्ता का अभिवादन करती हैं तब मुझे तुम्हारी याद आती है और सान्त्वना के लिये तुम्हारी मुसकान को ढूढ़ती हूँ!

जब विश्व मेरे अक्षत यौवन को सुन्दर-कछारों में सोया हुआ देख, मन्त्र-मुग्ध होता है तब मुझे रह-रह कर तुम्हारी याद आती है;

जब कलियों की परी-रानी मेरे नवपल्लव से प्राणों को प्रणय-वारिधि में डूबते-उतराते देख सिहर उठती है—तब मुझे तुम्हारी याद आती है!

तुम्हारी अनुपस्थिति में ब्रह्मा के कल्प से लम्बे दिन और लम्बी रात्रि की घड़ी-घड़ी और पल-पल में मुझे तुम्हारी याद आती है, क्योंकि मेरे जीवन में, मेरे प्रत्येक श्वास में, मुझे तुम्हारी आवश्यकता महसूस होती है!!!



आज वे फूलों का सुन्दर साज सजा मेरे कूचे में आये, परन्तु मैं उनकी ओर मुख उठाकर भी न देख सकी ! संकोच से उनकी छाया भी निगाह में भरकर अपने नेत्रों को सार्थक न कर सकी !

वे मेरे इतने निकट जा रहे थे, क्या यही मेरा सौभाग्य न था ?

मुझे मालूम था कि उनकी आँखें किसे ढूंढ़ रही थीं;

मुझे पता था कि उनका हृदय किसी की जूस्तजू में कलप रहा था—परन्तु इससे क्या ? उनकी पद-ध्वनि का सङ्गीत सदा मेरे कानों में गूँजेगा।

आज वे फूलों का सुन्दर साज सजा कर मेरे कूचे में आये, परन्तु मैं लज्जा से, उनकी ओर मुख उठाकर भी देख न सकी !!!



मेरे सङ्ग चलने का हठ न कर, मुझे तो बड़ी दूर जाना है !

तेरे वक्ष में तन्त्रीनाद और रतिरंग के स्वप्न छिपे हैं,

तेरे नयनों में रसीली सुहागरात की उत्कण्ठा थिरक रही है,

तेरे प्रवाल सदृश लाल अधरों से अमृत का स्रोत बह रहा है—

और तेरी नस-नस में आनन्द का सरस ज्वार प्रवाहित हो रहा है !

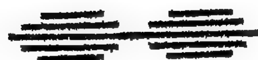
मेरा जीवन पतझड़ की शीर्ण पत्ती की तरह है जिसे झंझा-वात अपने इशारों पर नंगी नचाता है;

मेरा हृदय उस धूलि-धूसरित पुष्प की तरह है जिसको वायु ने सूँघ कर फेंक दिया है;

मेरी आत्मा के कोमल दूर्वादल को विपत्तियों ने रौंद-रौंदकर तहस-नहस कर दिया है !

छोरहीन विकट पथ की दुर्गमता को देखकर नाहक मुझे दोष देगी !

मेरे सङ्ग चलने का हठ न कर, मुझे तो बड़ी दूर जाना है !!!



एक दिन मैंने भूल से उन्हें आसव के बदले जीवन पिला दिया !

स्वप्निल सङ्गीत विरहिणी नायिका की तरह कभी सोता, कभी जागता, और कभी सिसकियाँ भरता था;

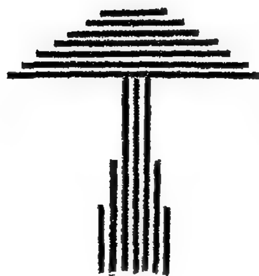
नाच का समा नहीं बँध रहा था, वह प्रथम घूँट मुँह में घुल कर गले में रह गया।

उन्हें वह भारी, कटु, और तीखा लगा;

उसकी ज्वाला से उनकी कोमल जिह्वा झुलस गई—

और उनकी आँखों में विषम अनुभूति की विषम छाप मुद्रित हो गई,

शमा की ज्योति क्षीण हो गई, प्याली के अधर काँपने लगे और उन्होंने मुँह फेर लिया ! आह ! एक दिन मैंने भूल से उन्हें आसव के बदले जीवन पिला दिया !

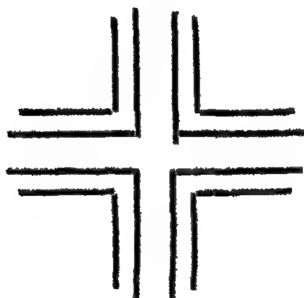


मैं वह आईना हूँ, जिसमें तुम अपने रूप और यौवन की छवि निहारते हो;

मैं वह पुस्तक हूँ जिसमें तुमने अपनी वंश-परम्परा और जीवनी अंकित की है; मैं तुम्हारी वह आनन्दिनी रचना हूँ जिसकी आवृति और पुनरावृति करते हुए तुम कभी नहीं थकते हो।

तुम्हारे लहू-मांस, हाड़-चाम, से बनी होने पर भी मैं वह अनन्त रहस्य हूँ जिसके चिन्तवन में तुम घंटों गुजार देते हो!

मैं वह आरसी हूँ जिसमें तुम अपने रूप-यौवन की छवि निहारते हो!!



तुम ही वह मोहन-मंत्र हो जिसका निशि-वासर जाप करते-करते मैं स्वयं साक्षात् मोहिनी बन गई हूँ !

तुम ही वह अमृत-घट हो जिसमें की सुधा पिला कर मैंने मरणासन्न मानवता के हृदय में अजर स्फूर्ति फूँक दी;

तुम ही तो वह अज्ञात रहस्य हो, जिसको कवि, संत, दार्शनिक और वैज्ञानिक अनन्त काल से ढूँढ़ रहे हैं !

तुम ही तो वह पूर्ण सत्य हो, जो अखिल का संचालन कर रहा है, और जो अटल है;

तुम ही वह हठीले मान हो, जिसे अपनाकर मैंने तुम पर विजय पाई है;

तुम वह सुनहरी कटार हो जिसे मैंने अपने हृदय का उष्ण शोणित पिलाकर जीवन का मोल जाना है !

तुम ही वह मोहन-मंत्र हो जिसका मैं निशि-वासर जाप करते-करते साक्षात मोहिनी बन गई हूँ !!!



निशानाथ के पार्श्व में शरद की अलसाई ज्योत्स्ना को देख कर मैं जल उठती हूँ, क्योंकि तुम घर नहीं हो। अरुणोद्यान में गुलेनार कलियों को उघड़ते देख कर मैं खीज उठती हूँ, क्योंकि उनकी महक से मुखरित होने वाला मधुकर इस वन में नहीं बसता;

अपने समर्पित यौवन में सहसा उफान आया देख कर मैं मर्माहत हो जाती हूँ, क्योंकि उसको बाँधने वाली रहस्यमयी शक्ति किसी अज्ञात लोक में विचरती है!

वाञ्छा-समुद्र की उत्ताल लहरों, आशा-सरिता के गह्वर भँवरों और जीवन-नद के विषम चढ़ते-उतरते ज्वारों का मैं अकेली अपनी टूटी नौका में बैठकर सामना करती हूँ!

निशानाथ के पार्श्व में शरद की अलसाई ज्योत्स्ना को देख कर मैं जल उठती हूँ क्योंकि तुम घर नहीं हो!



आज की रात चाँद कितना सुन्दर है!

नागिन-सी लहरें फन उठाती हैं, और सरिता-तट से टकरा कर चूर-चूर हो रही है;

कोमल पंखवाला उलूक महताब को बद्दुआएँ दे रहा है,

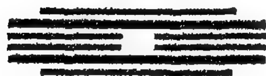
और—अर्धान्ध चिमगादड़ भी बड़ा परेशान है, क्योंकि इस उजाली रात में उसे नशेमन नहीं मिल रहा है! मेरा विरही-हृदय एक उजड़े, बन्द, मौन घर की तरह है जिसे केवल तुम ही खोल सकते हो!!

शबे—तनहाई में मैं तुम्हारे मल्लिकागौर मुख को ढूँढ़ रही हूँ,

तारिका—कुमुदनी का इत्र खींचकर तुम्हारी रूह को सुगन्धित कर रही हूँ;

टूटे स्वप्न के तारों को गले लगाती हूँ और स्मृति के खम में बचा पियूष पी रही हूँ!

आज की रात चाँद कितना सुन्दर है!





अरुणशिखा भोर होते ही भैरवी गा-गा कर प्रभात का अभिवादन करती है !

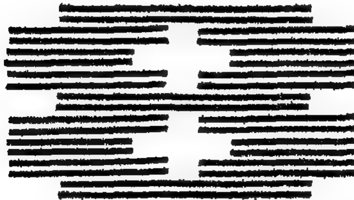
चकोरी चहक-चहक कर चन्द्रमा का आदर करती है जिस की शीतल किरणें उसकी ग्रीवा को चूमती हैं; पपीहा मधुर सङ्गीत से नील-मेघ का स्वागत करता है जो स्वाती-बूंदों से उस की युग-युग की तृषा शान्त करता है;

कोकिला व्योम में इन्द्र-धनुष को देखकर वृक्षों की नीली पत्तियों में छिपे नीड़ से कूजती है;

मैना, मोर और नीलकण्ठ, धान के खेतों और बाग़ों में गाते रहते हैं !

प्रकृति के इन कलावन्तों के सामने मेरी क्या हस्ती ?

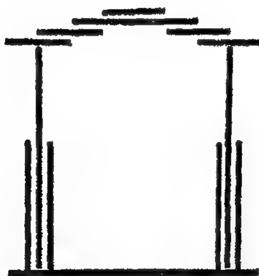
मैं तो अपने मोहन की आराधना यह आह छोड़कर ही करती हूँ !



मेरे नयनों के तारे !

विश्व में मैं तेरे पुनीत प्रकाश के सिवा और कुछ नहीं देख सकती हूँ, तेरी वाणी के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुन सकती हूँ,

और तेरे रूप और गुण की माधुरी के गीत गाने के सिवा मैं कुछ नहीं बोल सकती हूँ पर हाय—तु ही मुझ बेकसी की मूर्ति को आधी रात के सन्नाटे में सोती हुई छोड़ चल दिया !!



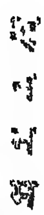
अँधेरे में मैं स्वर्ण-प्रभात के, मरुभूमि में गंगा-जल, गुलाब और सब्जे के, शिशिर में वसंत के, जीर्ण-शीर्ण और दयनीय जरा में सुखद यौवन के, भ्रम और अविश्वास में पूर्ण सत्य के और माया में मुक्ति के सुनहले स्वप्न देखती हूँ और मस्त रहती हूँ !

मूक हूँ पर असीरी में मैं आज़ादी के गीत गाती हूँ;

अन्धी होते हुए भी आकाश के नीरव तारों से सुर मिलाती हूँ; बहरी हूँ तो भी बुलबुल का राग अलापती हूँ और श्वास की गति रुकने पर भी मृत्यु के द्वार पर विश्वास, यौवन और प्रेम के तराने गुञ्जाती हूँ।

अँधेरे में स्वर्ण-प्रभात के सुनहले स्वप्न देखती हूँ !!!



जीवन, काल के बहते दरिया के वक्ष पर खिलनेवाला फूल है, पंखड़ियों पर चमकने वाला शबनम का क़तरा है, सान्ध्य गगन को दीप्त करने वाला तारक-चूर है और रंगे-शफ़क़ है जो अंशु-माली के उदय होते ही मिट जाता है।

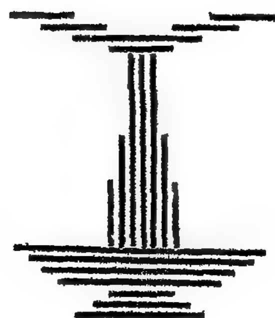
जीवन वायु का उच्छ्‌वास है, खिज़ां की पीली पत्ती है,

पञ्चतत्वों का क्रम से संगठन है और एक मधुर स्वप्न है जिसमें हर चीज़ रङ्गीन दिखती है।

जीवन, पवन से मुक्त की हुई एक लहर है जो खम-खाई, झागभरी, हिलोरों के साथ समुद्र के गर्भ में समा जाती है।

जीवन, किसी घायल पक्षी के बाज़ू से गिरा हुआ मायूस पंख है जो हवा के वेग से इधर-उधर उड़ता रहता है!

जीवन, काल के बहते दरिया के वक्ष पर खिलने वाला फूल है!!




जब ग़ैर मुझसे गाने को कहते हैं, तो गीत का गुलशन मेरे अधरों से प्रस्फुटित होता है;

मेरा सबल संगीत क्षीण-चन्द्र के वंकिम—विम्ब में भी वर्ण पूरता है —

और मेरी वीणा के रजत-तार बुलबुल के तरानों और गुलाब की कोमल आहों को ज्यों का त्यों दोहराते हैं।

किन्तु जब तुम मुझसे कुछ सुनाने के लिये कहते हो तो न मालूम क्यों मेरी सरस्वती का लोप हो जाता है !

क्या प्रेम पोस्त का पुष्प है जो मेरी राग-रागिनियों को अपने सुरभित श्वास से निद्रित कर देता है ? क्या प्रेम वह बाज है जो मेरे गीत-अन्दलीबों पर सहसा झपट कर गुलाब की सघन झाड़ियों में उन्हें नीरव कर देता है ?

जब ग़ैर मुझसे गाने के लिये कहते हैं, तब मेरे अधरों से गीत का गुलशन प्रस्फुटित होता है !!!



नवजात जलज-जलधरों की माला पहन कर सूर्य बिछुड़ रहा है;

चम्पक वर्ण सन्ध्या, जमुन-जल और तमालों पर नीले-पीले व्योम से उतर रही है;

इन्द्र की कामधेनु को लजानेवाली काली, धौली और कबरी गायें शोखी से मचलती, रँभाती, झूमती, वृन्दावन से घर लौट रही हैं और उनकी रज ने गौन अम्बर को ढक लिया है।

पुष्प-राग मणि की कान्ति वाली श्री राधाजू उन्हें दुहने गगरी थामे खड़ी है।

मरकत-द्युतिगात कृष्ण बछड़े को पकड़ते हैं और दोहन क्रिया प्रारम्भ होती है! गउयें, निखर सब्जे को खाती हैं, लम्बी-लम्बी पूँछ से अपनी चौड़ी रेशमी पीठ को सुहलाती हैं और दूध की गङ्गा अपने थन से बहाती हैं।

फेनभरे दुग्ध-पात्र पर से श्यामा के अद्भुत चाव भरे मृदु गीत गूँजते हैं, वृषभानु-दुलारी के श्री मुख पर श्रम-बिन्दु ओस-कणों से झलकते हैं और मधुश्याम उन्हें अपने कनकपीत पट से पोंछते हैं!

नवजात जलज-जलधरों की माला पहन कर सूर्य बिछुड़ रहा है!!

ऐ उदधि ! कौनसी दारुण ज्वाला तेरे अन्तर्तम में जाग उठी है ?

कभी तू अपने घन-गम्भीर भीषण आर्तनाद से दिगंत को कँपाता है,

कभी बालक की तरह सिसक-सिसक कर रुदन करता है

और कभी शोक से सुनने वाली वसुंधरा के कान में उद्वेलित लहरों को समेट, अपना पीड़ा-आकुल क्रन्दन उड़ेलता है—

परन्तु—

क्या क्षण भर के लिये भी अमर शीतलता और शान्ति का अनुभव कर मौन नहीं रह सकता ?

मुझे भी विरह का विषम अन्तर्दाह दिन रात भस्मीभूत कर रहा है, पर मैं तेरी तरह शोर मचा कर वफ़ा को बदनाम नहीं करती, मेरी भी जान प्रेम की अवर्णनीय पीड़ा से सीने में हलाक हुई जाती है, मगर मैं बुलबुल की तरह चहक-चहक कर उस आग के श्वेत शोले को शब्दों में व्यक्त नहीं चाहती !

ऐ फ़रियादी ! प्रेम के राज़ को गुप्त रखने में जो लज्ज़त है, वह ढिंढोरा पीट कर प्रकट करने में कभी नहीं, हरगिज़ नहीं !!!



यह गङ्गा-तट का गुलशन मुझे फ़िरदौस से भी ज्यादा प्यारा है !

ज़माना गुज़रा तब तू यहाँ इन्द्र-धनुष के रङ्ग की तितलियों के पीछे बेतहाशा भागता था,

कोकिला के कूज की नकल कर उसे चिढ़ाता था और लुटाता था खुले हाथ खज़ाना, फूलों को अपने नूर का !!

यह गङ्गा-तट का गुलशन मुझे फ़िरदौस से भी ज्यादा प्यारा है !

मयनोश भौंरे अब भी यहाँ मकरन्द पीकर फुलवारी में बहकते हैं, मयूर मद-मस्त हो सब्ज़ाए खुशरंग पर नाचते हैं, घटायें उमड़ती देख कर पपीहे पिया की वियोग व्यथा में दर्द-अंगेज़ आहें छोड़ते हैं, और मैं तनहाई में तेरे स्वप्न देखती हूँ, और अश्कों से मुँह धोती हूँ !

यह गङ्गा-तट का गुलशन मुझे फ़िरदौस से भी ज्यादा प्यारा है !

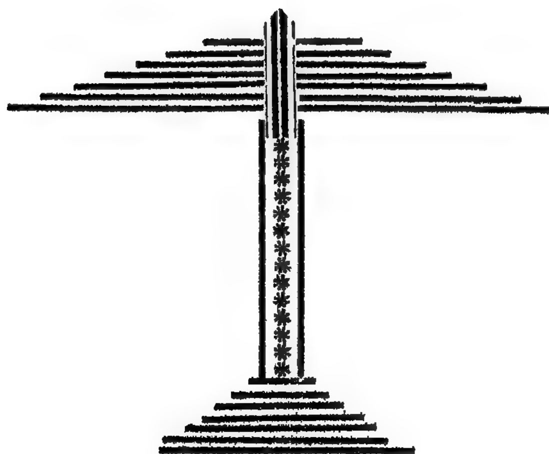
तेरे लता-मण्डप पर माधवी खिलती है, अशोक-पुष्प अँगारों

से अँधेरे में चमकते हैं, रजनी-गन्धा निशीथ की नीरवता में हवा के कन्धे पर सुरभि को बैठा कर तुझ तक संदेश पहुँचाती है;

मधुमालती तेरी प्रतीक्षा में तारों की तरफ़ देख कर अँगड़ाई लेती है; वृक्षावली तेरी स्मृति में विकल होकर गहरे निश्वास भरती है और तेरी भक्ति का कुमकुमा-परिमल सब दिशाओं में बिखेरती है।

क्या एक बार भी तू इस उपवन में अपनी उपस्थिति से फ़स्ले बहार न लायेगा ?

यह गङ्गा-तट का गुलशन मुझे फ़िरदौस से भी ज्यादा प्यारा है !



पी, जी भरकर पी, प्रेम ने फ़लक के पैमाने में वारुणी गुल-रङ्ग भरी है !

पी, तलछट तक पी, साक़ी ने तेरे जाम में मय गुलरङ्ग भरी है !

अंजाम की परवाह न कर, हलक़ में पहुँचते ही यह रङ्ग लायेगी और तेरे दिल में वे हसरतें पैदा करेगी, जिन्हें तू कोशिश करने पर भी पूरी न कर सकेगा।

वे, वे, स्वप्न जागृत करेगी, जिन्हें तू उम्र भर कठिन परिश्रम करने पर भी चरितार्थ न कर सकेगा और अनादिकाल से विरासत में मिला हुआ दर्देजिस्म और दूना होने की प्रबल हविस तेरे वक्ष में चैतन्य लाभ करेगी—

एक दिन काल की संहार-शक्ति आकर प्याले को टुकड़े-टुकड़े कर देगी, मदिरा को मिट्टी में बिखेर देगी और उन पैरों को जिन्होंने अब के मैखाने की राख छानी है निर्जीव कर देगी।

परन्तु न पीना भी तो दानिशमन्दी होगी; मगर सचमुच यदि तू पीने से इनकार करेगा तो एक बहुमूल्य अनुभव से वंचित रहेगा और तेरा जीवन अपूर्ण रहेगा।

पी, जी भर कर पी प्रेम ने फ़लक के पैमाने में वारुणी गुलरङ्ग भरी है !

पी, तल छट तक पी, साक़ी ने तेरे जाम में मय गुलरङ्ग भरी है !!



अ
स
म
आ

तेरे टेढ़ेमेढ़े मार्ग पर चलते-चलते मेरे पैर भटक जाते हैं तो भी मैं उनकी भर्त्सना नहीं करती हूँ !

राह में आशा के सब्ज़, वाञ्छा के दिलकश बैंजनी, पाप के खूनी लाल पर फ़िदा हो जाती हूँ और भाँति-भाँति के रङ्गों और बू वाले गुलों को तोड़ने के लिये रुक जाती हूँ;

तुझे विस्मृत कर अपनी हृद्तन्त्री को झंकृत करने वाली रागिनियों को मंत्रमुग्ध-सी सुनने लग जाती हूँ।

मैं तुझे भले ही भूल जाऊँ पर तू मुझे न भूल सकेगा, और मेरा अक़ीदा है कि मेरे समस्त अपराध सहज ही क्षमा कर देगा !!

तूही पथ है और तूही पथिक ! तूही काल है और तूही मञ्ज़िल !!!



पतझड़ की सन्ध्या सुनहली, अलसाई और गम्भीर है !

इब्तदाई शाम है, पर चिराग़ गुल हुआ चाहता है,

मेरी अन्तिम घड़ी अनक़रीब है, मेरी दास्ताँ अब ख़त्म होती है; विश्व-सुन्दरी से विदा होते हुए मेरा दिल नाशाद है, मेरी अधखुली आँखों में आँसू छलछला रहे हैं और श्वास की गति तीव्र हो गई है—

तो भी मुझे जाना ही पड़ेगा ! शरद का आरम्भ है, धान के खेतों में कनक-पीत बालियाँ पक रही हैं,

सुनहरे वृक्षों पर स्वर्ण-फल लटक रहे हैं, प्रशान्त सरिता-सरोवर लबरेज़ भरे हैं और पक्षियों की फड़फड़ाहट से अम्बर प्रकम्पित है।

मन्दिर में आरती के समय झालर घंटे बज रहे हैं,

ब्राह्मण गम्भीर ध्वनि में सामवेद का गान कर रहे हैं,

और तारों के मेहराब के नीचे नीलकण्ठ बारबार ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः का पाठ पढ़ रहा है।

सन्ध्या सुनहली, अलसाई और गम्भीर है; मृत्यु का काला

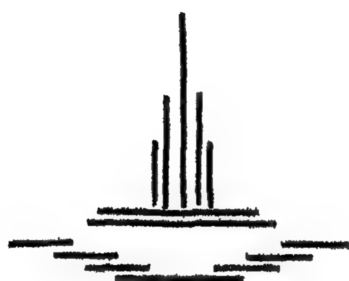
घोड़ा मेरे द्वार पर कसा खड़ा है, शब्द शून्य में विलीन हो रहे हैं,

सुपरिचित स्वप्नों का तार टूट रहा है,

स्मृति भटक रही है और जीवन-सितारा घनी अँधियारी में अस्त हो रहा है !

सन्ध्या सुनहली, अलसाई और गम्भीर है; तुम फलो-फूलो—मैं तो चली !!

खुदाहाफिज़, अल्विदा !!



हम तो यात्री अमरापुर के, न हमारे घरबार है, न धन-दौलत, न हमारे बन्धु-बान्धव हैं, न यार-दोस्त !

हम तो यात्री अमरापुर के !!

जीवन—कादम्बिनी के पंकज को हम खूब गथते हैं—मगर हमें वह आनन्दिनी मणि नहीं मिलती; आधि, व्याधि, उपाधि भरे संसार में गहरे गोते लगाते हैं;

किन्तु मुक्ति का वह अमोल मोती हमारे हाथ नहीं आता।

हम तो यात्री अमरापुर के ! सुबह से शाम तक खञ्जरी ले, हम ललना-ललित वैभव-विभूषित रौरव-रञ्जित, शहरों में घूमते हैं,

बियाबान जङ्गलों की खाक छानते हैं और तारों से निगाह मिलाने वाले, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर चढ़कर दूर तक दृष्टि फैलाते हैं;

किन्तु उस पुर के गुम्बज कलश और शिखर क्षितिज के उस पार तक कहीं नज़र नहीं आते।

हम तो यात्री अमरापुर के ! माया और ब्रह्म के बीच की दुर्गम घाटी पार करते समय सूर्य की प्रखर किरणें हमें झुलसाती हैं,

वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदे हमें तीर सी लगती हैं।

तूफ़ान हमारे पैर उखाड़ते हैं, मयंक-बिम्ब हम पर सुधा बरसाता है और उस ज्योति-नगर तक पहुँचने की अमर आशा हमारे जराजीर्ण शरीर में नवीन स्फूर्ति भरती है, पर हमारी यात्रा अनन्त है ! हम तो यात्री अमरापुर के !!!

ऐ मूर्ख, पंचेन्द्रियों के पिञ्जरे में तैंने इस हंस को क्यों क़ैद कर अनन्त जीवन के आघातों से सुरक्षित कर रखा है ?

निरञ्जन ज्योति को निरन्तर देखने वाली इस की दिव्य दृष्टि माया के चल-चित्र देखते-देखते धुँधला गई है।

सदा अनहदनाद को सुनने वाले इसके कान विश्व के भयङ्कर चीत्कार को सुनते-सुनते पथरा गये हैं, ब्रह्माण्ड में जीवन—विद्युत् सञ्चार करने वाला इसका पारस-स्पर्श जहाँ की भौतिक वस्तुओं को छूते-छूते मिट्टी हो गया है,

कल्पतरु के अमृत-पान का आस्वादन करने वाली इसकी कोमल रसना संसार—विष-वृक्षके खट्टे, मीठे, कड़ुए, कसैले फल चखते-चखते छिद गई है और नन्दन-कानन के पारिजातों की सौरभ सूँघने वाली इसकी घ्राण-शक्ति दुनिया के जहरीले वातावरण में श्वास लेते-लेते मृतप्राया हो गई है।

हंसा ! अमरता का आह्वान सुनकर हीरक-कुसुम-सी कोमलता की कुञ्जी से, अस्थिपिंजर के मांसल कफस का द्वार धीरे से खोलना, क्षण-भंगुर मोह के बन्धनों से अपने परों को मुक्त करना, और फिर अनन्त आकाश में, विजय वैजयंति फहरा, आजादी का गान गाते हुए उड़जाना !!!

बाल-रवि-प्रकाश-पुंज-रंजित विश्व का मनोरम स्वप्न मेरे भाग्य में बदा ही नहीं, क्योंकि मैं तो हृदय में प्रेम का दावानल लेकर उत्पन्न हुई हूँ !

सौन्दर्य, राग, आनन्द, दुःख और व्याकुलता का ज्वार मेरे हृदय में उमड़ रहा है, किन्तु पार्थिव पदार्थों की भाँति मुझे भी उल्लास और मृत्यु के पथ पर अग्रसर होना ही पड़ेगा। रात्रि के भग्न हृदय की वीणा के टूटे तारों की झंकार, नदी-कूल के तमाल-वृक्षों और अन्धकार की घनी छाया, नील गगन में नक्षत्रों का नीरव आलोक, वनस्थली पर दूब की भीनी महक, असीम आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के मस्त तराने, अनन्त और प्रवाहित होने वाली कालिन्दी का कलकल नाद, भूख और जरा से छटपटाते हुए प्राणियों का क्रन्दन, अट्टहास और तप्त आँसू, प्रेम और मृत्यु—हाँ यही तो जीवन का रहस्य है !

अमराई में हवा चल रही है और आम टपक-टपक कर गिर रहे हैं।

जहाँ में मृत्यु का चक्र निरन्तर चल रहा है और हम जीवन-तरु की शाखाओं से टूट-टूट कर गिर रहे हैं !!

ऐ मूर्ति-भञ्जक ! मन्दिर तोड़, मस्जिद तोड़, और तोड़ सनातन रस्मो-रिवाज का मज़ार, पर मत तोड़—

बुत इन्सान की आज़ादी को क्योंकि वह तो ख़ास ख़ुदाई है !



हुस्ने सनम पर फ़िदा होना ही मेरा क़सूर था !

मैंने तुम्हें मौसमे-बहार में गुलाबी प्रभात के नीरव प्रकाश में देखा—

श्वेत कमल और लाल कमल तुम्हारे सम्मुख लज्जा से पीत-वर्ण हो गये,

तुम्हारे रक्तिम अधरों की रेखाएँ फूल की पंखुड़ियों से कई गुना अधिक सुन्दर थीं—

और तुम्हारे नयनों की सुन्दरता के सामने प्रकृति की अनुपम सुषमा चेतना-हीन जान पड़ती थी।

मैंने तुम्हें दीपक के प्रकाश में देखा—चन्द्रकान्त मणि, और दिव्य रत्नों की प्रभा तुम्हारे सम्मुख फीकी पड़ गई,

चैती पूर्णिमा के चाँद और तारे तुम्हारी ज्योति के सामने शर्मा गये,

तुम्हारी गति में सङ्गीत था और तुम्हारी मुसकान में अरुणोदय का ओज और आनन्द !

मैंने तुम्हें क्या देखा, अजल को देखा और गर्दिशे दौराँ ने मुझे मटियामेट कर दिया।

हुस्ने-सनम पर फ़िदा होना ही तो मेरा क़ुसूर था !!!



मैंने तुम्हें देखा, दूर से—

तुम्हारा मुख-मण्डल प्रस्फुटित सहस्रदल कमल-सा था,

तुम्हारी अलसाई पलकें शबनम-सनी पंखुड़ियों सी झुकी हुई थीं,

बसन्त की सब कोमलता तुम में समाई थी और फूली सन्ध्या की कमनीयता फूट-फूट कर तुम से निकल रही थी !

तुम्हारे दर्शन ने मेरे मुर्दा दिल में नई ज़िन्दगी का शबाब भर दिया,

मेरे हृदय के टूटे सितार के लिये तुम्हारे रूप में नवीन तान मिल गई, तुम्हारे दीदये-उल्फ़त ने मेरी रूह के निर्बल बाज़ुओं में उड़ने की शक्ति फूँक दी, .

मेरा बेकसी का जीवन भी सहसा विजय-नाद से परिपूर्ण हो गया और अफ़सुर्दगी के दिनों का ख़ौफ़ अब मेरे लिये सिर्फ़ एक भूला हुआ अफ़साना रह गया !

मैंने तुम्हें दूर से देखा !!!



तुम मुझ पर दिलो जान से फ़िदा हो !

मैं भी तुम्हारे नूरे अज़ल पर अन्तस्तल से निसार हूँ—फिर भी हाड़-चाम की दो दीवारें, तुम्हारे और मेरे दरम्यान खड़ी हैं जो हमको अद्वैत नहीं बनने देतीं—

तुम्हारे नयन-झरोखों में मैं तुम्हारी अन्तर-आत्मा के दर्शन करना चाहती हूँ, किन्तु वहाँ भी मैं अपने बहिरङ्ग के ही छाया-चित्र देखती हूँ—

अर्ध रात्रि में जब चाँद अपनी स्निग्ध ज्योत्स्ना से, थक कर सोयी हुई धरती को पुलकित करता है और बेचैन पवन अपनी जिन्दगी की दास्ताँ को वृक्षों के कानों में सुनाता है तब—

मैं तुम्हारे बाहुपाश में बँधी हुई क्षण भर के लिये समझती हूँ कि तुम्हारे-मेरे बीच की दुई मिट गई; किन्तु—

शीघ्र ही मेरा हृदय तितली की भाँति आकाश में उड़ने लगता है, और मैं द्वैत के चक्कर में पड़ जाती हूँ।

तुम मुझ पर दिलो जान से फ़िदा हो, मैं भी तुम्हारे नूरे अज़ल पर अन्तस्तल से निसार हूँ; फिर भी हाड़-मांस की दो दीवारें तुम्हारे-मेरे दरम्यान खड़ी हैं !!!

प्रियतम ! तुम कहते हो कि दुनिया के रंजो-ग़म में फँस कर तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम वैसे ही पीला पड़ जायगा, मुर्झा जायगा, जैसे चमन के गुलाब मध्याह्न के प्रखर आतप में;

तुम कहते हो कि मेरे शब्द, जिनके द्वारा मैं अपने इश्क़ का इज़हार करती हूँ, उस आग के बने हुए हैं, जो सिर्फ़ एक क्षण के लिये ज़ाहूर होती है और फिर सदा के लिये बुझ जाती है;

तुम कहते हो कि प्रणय के ये उष्ण चुम्बन, जिनमें दिले नाशाद में भी जवानी का नया जोश भरने की अद्भुत शक्ति है ;

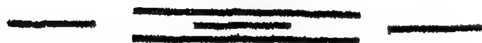
प्रेम के सर्द होते ही ठण्डे हो जायँगे—

यदि भविष्य में जो कुछ तुम कहते हो सब ठीक निकले—

मैं तुमसे, ऊब जाऊँ जिनकी मैं आज पूजा करती हूँ, अर्चना करती हूँ;

मेरे शब्द और भाव, जिनसे मैं प्रेम के चित्र बनाती हूँ ख़ाक में मिल जाँय,

तो प्यारे, स्मरण रखना कि पवित्र प्रेम के श्वेत शोले के बुझते ही मेरे प्राण-पखेरू भी उड़ जाँयगे !!!







अलविदा कैसी ? मैं तो तुझे नहीं जाने दूँगी !

क्या तेरे-मेरे प्रेम का यही अन्त ? गाढ़ आलिङ्गन, अन्तिम चुम्बन, और सदा के लिये विदा !

ना, ना, मैं तुझे न जाने दूँगी न जाने दूँगी !

मैं तेरे सम्मुख अपना वक्ष—जिसपर तू शीश रखकर अनेक बार मीठी नींद सोया है—चीर कर रख दूँगी; तू—

मेरे उदास हृदय को खुली पुस्तक के पन्ने की तरह पढ़ेगा, अपनी ग़लती महसूस करेगा, और मेरे पैरों में पड़कर क्षमा-याचना करेगा ! मैं तुझे न जाने दूँगी !

गलबहियाँ करने वाले हाथों से ख़ञ्जर चलाकर तू मेरे जिगर में सदा हरा रहने वाला घाव करे, उसके पूर्व उन प्रणय के प्रणों की याद तो ताज़ा करले, जो तैंने सूर्य और चन्द्र, वशिष्ठ और अरुंधति, अग्नि और सप्तर्षियों को साक्षी रख कर वरमाला पहनाने के समय किये थे—मैंने तुझे अनेक बन्धनों से बाँध रखा है।



मैं तुझे न जाने दूँगी !!

तेरी आत्मा के उद्गम से बह निकलने वाले प्रेम-स्रोत के तट पर जब मैं अपनी प्रथम प्यास बुझाने आई तब मुझे क्या पता था कि वह संसार की मरुस्थली में शीघ्र ही सूख जायगी।

यदि मेरा सौन्दर्य तुझे अब शलभ की तरह अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता तो इस हृदय-हीन जहाँ से मुझे शीघ्र ही कूँच करना चाहिये।

प्रेम तेरे लिये दिल बहलाव का सरञ्जाम हो सकता है, परन्तु वह तो मेरे प्राणों का प्राण है।

आखिरी तस्लीम कैसी ? मैं तो तुझे न जाने दूँगी—हरगिज़ न जाने दूँगी !

क्या तेरे-मेरे प्रेम का यही अन्त ? आलिङ्गन, चुम्बन, और सदा के लिये बिदा !!

ना, ना, मैं तुझे न जाने दूँगी !!!



ऐ मेरे शैदा ! यह कैसी आँख मिचौनी ?

तू भागता है तो मैं पकड़ती हूँ,

मैं रूठती हूँ तो तू मनाता है,

तू छिपता है तो मैं खोजती हूँ,

तो मेरे शैदा यह कैसी आँख मिचौनी ??

जब मैं ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान होकर हार मान लेती हूँ तो तू क्षण भर के लिये अपने मुँह से माया का नक़ाब दूर कर लेता है, और मैं—नये आसमान में नये आफ़ताब के नूर को देखती हूँ और दङ्ग रह जाती हूँ, घटायें तितर-बितर हो जाती हैं पर—दूसरे ही लहमें में फिर से वही खेल शुरू होता है—

तू न मालूम कहाँ अदृश्य हो जाता है, और मैं बौरिन तेरी रहस्य-मय तलाश में निकल पड़ती हूँ !

जीवन और मृत्यु के घने अँधेरे में जब तारों की भी पलक झपक जाती है, मैं तेरे प्रेम की शमा को लेकर कभी गिरती हूँ, कभी उठती हूँ, पर तेरी खोज जारी रखती हूँ !



तूही मेरा आदि है और तूही अन्त, तूही मेरा आशिक़ और तूही माशूक़,

तूही मेरे हृदय में इश्क़ का शोला जलाने वाला है और तूही गुलगीर भी !

अरे महबूब ! इस बार जब मैं तुझे एक मुहूर्त के लिये भी पा जाऊँ तो अपने हृदय-कुटीर में तुझे क़ैद कर अमर प्रेम का ताला डाल दूँ और उसकी कुञ्जी को काल के अनन्त प्रवाह में बहा दूँ !

ओह तब—ऐ मेरे छलिया छैल ! तू मेरे नयनों में धूल फेंक कर भी फिर कभी सरेदस्त न भाग सकेगा !!

ऐ मेरे शैदा यह कैसी आँख मिचौनी............???





कृष्ण कन्हैया ! मुझे बाँसुरी बजाकर बुलाना,

मुझ से छिप-छिप कर मिलने आना !

जब से मैंने प्यारी-प्यारी साँवरी सूरत देखी है तब से मेरा जियरा बेचैन है; मैं गवाक्ष और झरोखों से बार-बार अधीर हो कर झाँकती हूँ,

अपने नयन गोकुल की राह पर बिछाती हूँ और कल्पना के कान से, तेरे दिल की धड़कन से हरदम आनेवाली राधे—राधे की प्रेम प्रीत भरी आवाज़ सुनती हूँ।

कृष्ण कन्हैया मुझे बाँसुरी बजाकर बुलाना, मुझ से छिप-छिप कर मिलने आना !!

दधि बेचते वृषभानुपुरा की बीथियों में, गोकुल ग्राम के हाट, बाट, चौहट्टों में, वृन्दावन की कुञ्ज-गलियों में, अथवा यमुना-तट पर नंद जू की बिखरी धेनु मँझारन, यदि तेरी-मेरी देखा-देखी हो जाय, तो तू बरजोरी मेरा मार्ग रोक कर, ऐ नटवर, दान-लीला का अभिनय न करना— मेरे पास से ऐसे निकल जाना जैसे अपरिचित हो—



मेरी तरफ़ देखते हुए भी देखना परन्तु—मेरी चुलबुली सखी सहेलियों और अपने सङ्गी-नटवर गोपों की निगाह बचा कर अपनी हिरन-सी नशीली आँखों से मेरी ओर प्रेम की सैन करना न भूलना !

कृष्ण कन्हैया मुझे बाँसुरी बजाकर बुलाना, मुझसे छिप-छिप कर मिलने आना !!

ग्वाल बालों में मेरे निष्कलंक रूप की निन्दा करना,

रसिक मण्डली में तेरे-मेरे प्रेम को लेकर कोई व्यंग करे तो मुझे जी भर कर कोसना, मुकर जाना, पर—

देख, हँसी-दिल्लगी में भी तू किसी किशोर गोप-लड्डी से नेह का नाता न जोड़ना, कहीं उसका जादू तुझ पर न चल जाय और वह तेरा हृदय मुझ से फेर न ले !

कृष्ण कन्हैया मुझे बाँसुरी बजा कर बुलाना।

मुझसे छिप-छिप कर मिलने आना !!!





तू कौन है ? कहाँ से आया है ? कहाँ जायगा ??

दानिश-मन्दों से पूछो, मुझे तो कुछ पता नहीं !

माया और ब्रह्म का भेद तो समझा, द्वैत और अद्वैत का तारतम्य तो निकाल, कुछ वहाँ की हक़ीक़त तो कह !

दार्शनिकों से दरियाफ़्त करो, मुझे तो सचमुच मालूम नहीं !

कर्ता और कर्म के झगड़ों का निष्कर्ष तो बता, जीवन और मरण का रहस्योद्‌घाटन कर, भविष्य के घूँघट का पट तो खोल !

आमिलों, ज्ञानियों, ज्योतिषियों, से पूछो मैं तो बेख़बर हूँ !

मैं क्यों ज़िन्दा हूँ, कालचक्र क्यों घूमता है यह भी जानने की मुझे मुतलक़ परवाह नहीं !

जन्नत मेरे लिये नीले आसमान का विस्तार है, पृथ्वी सिर्फ़ गर्दोग़ुबार से भरी सड़क,

और ईश्वर चमचमाता हुआ सितारा ! मैं तो सुबह से शाम तक आवारागर्दी करता हूँ,



मधुकरी कर पेट पालता हूँ और नदियों के बहते नीर से प्यास बुझाता हूँ ! ठण्डी हवा के झोंके मेरे थके-मादे शरीर को तरोताजा बनाते हैं,

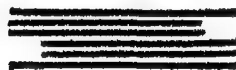
पत्ती मेरे हाथों पर उतरते हैं, मेरे कन्धों पर विश्राम लेते हैं, तारे मेरे नयनों में समा जाते हैं, और आकाश मुझे अनन्त शान्ति देता है !

रमते साधुओं की धूनी पर मैं अक्सर बैठता हूँ—

और नींद लगने पर वृत्तों के नीचे निस्तल भूमि पर पड़ा रहता हूँ,

दीन के पचड़े और दुनिया के गोरखधन्धों से दूर भागता हूँ और—सुबह से शाम तक आवारागर्दी करता हूँ ! जन्नत मेरे लिये नीले आसमान का विस्तार है, पृथ्वी सिर्फ गर्दोग़ुबार से भरी सड़क !

और ईश्वर चमचमाता हुआ सितारा !





ऐ सय्याद ! तैने पिंजरे में इस अन्दलीव के पर कतर लिये,

फिर भी—

बहार के स्वागतार्थ वह चहक-चहक कर इस काले क़फ़स को गुलज़ार कर रही है !

वह अपने तरानों की मस्ती में तेरे जुल्म की याद भूल गई,

प्रेमी जनों का परम्परागत विश्वासघात भूल गई, जहाँ की खोटाई का अफ़साना भूल गई और भूल गई सारा रंजो-ग़म !

सहने-ज़िन्दा में वह शैशव के स्वप्न देख रही है,

अनन्त आकाश देख रही है, इस धूलि-धूसरित कूचे में फूलों की सर-सब्ज़ क्यारियाँ देख रही है और देख रही है इस असीरी में भी आज़ादी का सुखद प्रभात !

बसंत ने इसके बुझे हुए दिल में यौवन का सरूर भर, बाली उम्र के नशेमन की स्मृति हरी कर दी है,

और सङ्गीत का अजस्र स्रोत उसके हृदय से फूट-फूट कर बह रहा है !



दीवानी, बहार से मिलने के लिये चार दीवारी के ऊपर उठती है, किन्तु बन्दीगृह की छत से टकरा-टकरा कर हाँफती सिसकती नीचे गिरती है—

और चोट पर चोट सहते-सहते खून से लथपथ हो बेचारी बे होश हो जाती है !

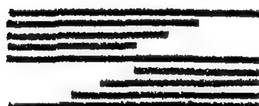
ऐ सय्याद ! तैंने पिंजरे में भी इस अन्दलीब के पर कतर लिये !!!

सोने के पूर्व मैंने चिराग़ गुल कर दिया !

हृदय में निरन्तर हलचल पैदा करनेवाले पत्थर बने अपरिचित पद्चिह्न धुँधले हो गये, किन्तु गाड़ियों में जुते हुए बैलों की आँखों की तेज चमक ने उस सोये हुए रहस्य पर पड़ कर एक अज्ञात आशंका उत्पन्न करदी !

रात्रि के नीरव अन्धकार में तुम्हारा अस्पष्ट चित्र मेरे मानस-पट पर स्पष्ट हो गया और उस प्रशान्त सन्नाटे में मुझे रह-रह कर वह मृदु वंशी-रव सुनाई दिया जो प्रतिपल तुम्हारे अधर-संकुल से निकल कर संसार को निद्रा में रमा रहा था।

सोने के पूर्व मैंने चिराग़ गुल कर दिया !



मैं वह सारिका हूँ जो दिन-रात प्रेमी के पढ़ाये हुए गीत गाती रहती है !

× × ×

घसियारिन ! इस बीड़ की घास न काट, मेरे प्रेमी के अश्व के लिये इसे ज्यों की त्यों खड़ी रहने दे !

घसियारिन इस बीड़ की घास न काट !

यौवन के आगमन से मेरे हृदय-समुद्र में आलोड़न नहीं हुआ!

बसंत के मदभरे स्पर्श से मुझ में लहरें न उठीं, विश्व के शोकपूर्ण क्रन्दन का करुण गीत सुनकर मुझ में करुणा न उत्पन्न हुई;

राज-राजश्वरों की अतुल-वैभव राशि से अठखेली देखकर मैंने आहें न भरीं;

प्रलय का डमरू सुनकर भी मेरे आह्लाद में कमी न हुई!

मृत्यु का राग सुनकर मुझे भय न हुआ, किन्तु मैंने जीवन-प्याली में समस्त राग-मयी भावनाओं को उड़ेल कर उसका स्वागत किया!



अरुणशिखा ! तीर से तेरा हृदय छेद दूँ; भोर होते ही तू अपनी बाँग से मोहन को मेरे स्वप्नलोक से भगा देता है !

अरुणशिखा, तीर से तेरा हृदय छेद दूँ !

× × ×

पुष्प-सूँघी !

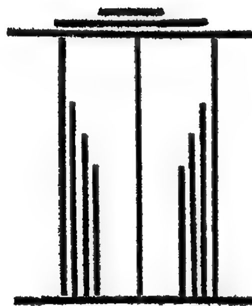
इन छोटी-छोटी मधुमक्खियों को न चुग जो मेरे फूलों में गूँज-गूँज कर मेरे गुलशन को गुलज़ार कर रही हैं !!



बालरवि के प्राणानुभावन प्रकाश में जब तारे ओझल हो गये तब तुमने कहा, "मैं तुम्हें प्यार करता हूँ"!

जब मेरी मृगमद-सुरभित, श्यामल अलकावली, हिमश्वेत हो गई और जरा-प्रताड़ित शरीर लाजवन्ती की तरह काँपने लगा तब तुमने कहा "मै तुम्हें प्यार करता हूँ" !

जब मृत्यु के वीभत्स बोसे से अधर नीले पड़ गये और नयनों पर काँच आ गये तब तुमने कहा "मैं तुम्हें प्यार करता हूँ" !!

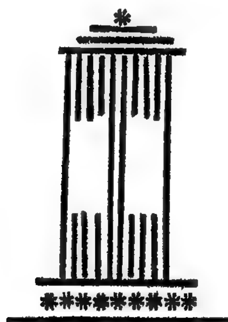


१२

जन्म-जन्मान्तर से तुम और मैं इस जन्ममरण की भूल-भुलैया में भटकते २ थक गये, फिर भी इसे न लाँघ सके ! बताओ, अब अकेले तुम इसे कैसे पार करोगे ?

× × ×

मैं गङ्गाजल से तुम्हारे पाद-पद्मों का परिक्षालन करती हूँ कि वह जगती-तल को पुनीत करनेवाला नीर भी तुम्हारे स्पर्श से पवित्र हो जाय !



मैं ऐबों की खान हूँ तो भी न मालूम तुम मेरे कौन से गुण पर रीझ उठे हो !

जब चिरनिद्रा के आँचल में मुख छिपा जगत सोता है,

पतझड़ की ममत्व भरी गोद में प्रकृति अपना सौन्दर्य बिखेर शान्त होती है,

और—चांदनी धरणी की धूल में मिलकर मैली हो जाती है तब

मैं—प्रलय का आह्वान कर उसे प्रणय-गान सिखाती हूँ !

सन्ध्या-सुन्दरी के अवगुण्ठन में दिनमणि छिपता है,

नवोढ़ा के कलित शयनागर में बिखरे आभूषणों की तरह तारे आकाश में बिखर पड़ते हैं,

और नदी के किनारे का अकेला सारस मौत की घड़ियाँ गिनता है, तब मैं अमर मिलन की अभिलाषा को जागृत कर तुम्हें आमंत्रण देती हूँ !

मैं ऐबों की खान हूँ तो भी न जाने मेरे कौन से गुण पर तुम रीझ उठे हो !!!



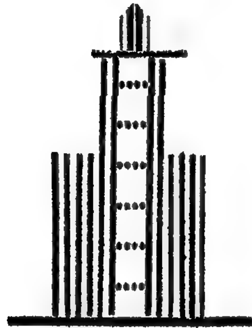
रात अपने कोमल पङ्खों को तेरी कजरारी पलकों से स्पर्श करती उड़ती है; उसके बाजू स्वप्नों के बोझ से भारी हैं !

सुन, वह यमुना-पुलिन रास और मुरली-रव के गीत गाते हैं !

प्रेम से प्याली भर कर तुमने मुझे पिलाने को हाथ आगे बढ़ाया किन्तु तुम्हारे ओज से मेरे अधर हिल गये और मदिरा तब तक पहुँचने के पूर्व ही छलक कर भूमि पर बिखर गई !

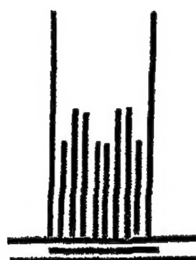


पलास के पत्ते नहीं गिरे हैं; सरिता के जल में उतार नहीं आया है; मैं अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में हूँ। चक्रवाक चकवे को बुला रहा है, यात्री सफर समाप्त कर घर पहुँच गये हैं! मैं अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में हूँ!



घायल सिंह बाँसां क्यों उछलता है ? दीपक की लौ, बुझने के पूर्व सहसा क्यों जल उठती है ? मरणासन्न—रोगी मृत्यु के पूर्व क्यों चैतन्य लाभ करता है ?

कदाचित्—मृत्यु के आह्लाद से !!



फ़स्ले-गुल में तुमने मुझे बाटिका में न घुसने दिया, फ़स्ले-फल में भी तुमने उद्यान में मेरा स्वागत न किया; ख़िज़ाँ में फूल और फल के काफ़ले सिधार गये, तब भी क्या गुलशन में मेरा प्रवेश निषिद्ध होगा ?





चैत्र में गुलाब की चटकन और श्रावण में झींगुर की चहक सुनकर कौन सोच सकता है कि उनका जीवन क्षणिक है ?

मेरा हृदय वह शतदल कमल है, जो तुम्हारे प्रेम के प्रकाश में खिलता है, और उसके अभाव में मुर्झा जाता है !

